व्याख्यान

आज के समय में जबकि शिक्षा का बाजारीकरण हो रहा है, बाजार की सेवा के लिए तमाम पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। शिक्षा अदद नौकरी का जरिया बन गई है, ऐसे समय में प्रो. दयाकृष्ण का यह व्याख्यान शिक्षा के संदर्भ में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है कि शिक्षा द्वारा सिर्फ ज्ञान, सूचनाएं और बुद्धिमता अर्जित करना ही नहीं है बल्कि गंभीरता, प्रतिबद्धता, ईमानदारी, सहयोग एवं अन्य केन्द्रित चेतना अर्जित करना भी है।

व्याख्यान में कहा गया है कि सही और गलत का फर्क तथा ज्ञान स्थिर नहीं है। ऐसे में विद्यार्थी को इस फर्क, जो कि है, के प्रति चेतन एवं संवेदनशील किया जा सकता है। विद्यार्थी इसे चिन्तन एवं स्व-प्रयत्न से अर्जित कर सकता है। इस फर्क का बोध एवं सार्थक जीवन जीने की इच्छा पैदा करना शिक्षा का उद्देश्य हो सकता है।

ज्ञान का बदलता स्वरूप और शिक्षा की समस्या

❑ प्रो. दयाकृष्ण

इस व्याख्यान की शुरूआत तीन सवालों से करते हैं। मेरा पहला सवाल है, चिन्तन का उस विषय से क्या संबंध है जिस पर चिन्तन किया जा रहा है? हम यहां शिक्षा या सीखने-सिखाने के काम पर चर्चा या चिन्तन करने के प्रयास के लिए एकत्रित हुए हैं। लेकिन यह चिन्तन है किसके बारे में ? मैं स्वयं, औपचारिक और अनौपचारिक रूप से, शिक्षक रहा हूं। जब हम पढ़ा करते थे, कॉलेज में, तब भी पढ़ाया करते थे दोस्तों को, विद्यार्थियों को। लेकिन इस पर जो चिन्तन है, सोचना है, वह क्या है ? मैं एक आधारभूत सवाल उठाना चाहता हूं - हम सिर्फ शिक्षा पर ही चिन्तन नहीं करते हैं, हम सभी चीजों पर चिन्तन करते हैं। हम चिन्तन करते हैं जिन्दगी के मायने क्या हैं ? ब्रह्मांड क्या है? ज्ञान क्या है ? शुभ क्या है ? सौंदर्य क्या है ? हम सभी चीजों पर चिन्तन करते हैं। इस चिन्तन को दार्शनिक चिन्तन कहते हैं।

इस सोचने का क्या कोई असर होता है ? बड़े-बड़े लोग जिनका नाम लेते ही हमारा सिर झुक जाता है, दिल में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, उन लोगों ने क्या कहा, क्या नहीं कहा आदमी के लिए ? क्या उनके विचार से, उनकी प्रज्ञा से, उनकी बुद्धि से मनुष्य पर प्रभाव पड़ा? क्या ज्ञान पर चिन्तन से ज्ञान बदलता है ? क्या जिन्दगी पर चिन्तन से जिन्दगी बदलती है? क्या किसी भी चीज पर चिन्तन, जिस पर चिन्तन किया जा रहा है, उस चीज को बदलता है जिस पर चिन्तन किया जा रहा है ? यह मेरा पहला सवाल है। मेरा दूसरा सवाल है, ये चिन्तन जो किया जा रहा है वह एक जड़वत अतीत पर किया जा रहा है न कि जीवंत वर्तमान या उस पर जो कि भविष्य में आने वाला है। हम जिस पर भी विचार करते हैं, जब भी विचार करते हैं, उस पर विचार करते हैं, जो बन चुका है, जो हो चुका है, जो हमको पढ़ाया गया है, जो किताबों में लिखा हुआ है। यह चिन्तन, जो हमारे चारों तरफ है, उस पर नहीं है। यह चिन्तन हमारे अपने अनुभव पर नहीं है, किताबी अनुभव पर है।

हम अनुभव के बारे में बात करते हैं लेकिन स्वयं के अनुभव पर चिन्तन नहीं करते हैं। हम उस अनुभव पर चिन्तन करते हैं जिसे अतीत में विचारबद्ध किया गया है या उस पर जो कि हमारे सामने किताबों ने या परम्परा ने प्रस्तुत किया है और जिसके कि प्राण निकल चुके हैं। हम प्राणहीन चीज पर चिन्तन करते हैं और समझते हैं कि किसी जीवन्त चीज पर चिन्तन कर रहे हैं। किसी ने क्या कहा, कब कहा, कहां कहा, उसको दोहराते रहते हैं। नाम बड़े-बड़े हैं, लोग बड़े-बड़े हैं, और हम करें भी क्या ? हर क्षेत्र में सोचने के बारे में सोचने की जो कहानी है 'ऐतिहासिक' है 'टेम्पोरल' है। और जब हम सोचते हैं या पढ़ाने का प्रयास करते हैं तो हम यही पढ़ा रहे होते हैं, इतिहास पढ़ा रहे होते हैं। लेकिन ये जो इतिहास है वह तो पहले ही अतीत बन चुका है।

मैं यह सवाल इसलिए उठा रहा हूं क्योंकि यह एक बड़ा सवाल है और यह सिर्फ शिक्षा से ही संबंधित नहीं है। मेरा चिन्तन उसे कैसे प्रभावित कर सकता है जो घट रहा है ? क्या घट रहा है? अगर आपको आज के संदर्भ में सीखने की बात, शिक्षा की बात करनी है तो मैं समझता हूं अखबार उठाकर देखिए। अंग्रेजी के

अखबार उठाइए तो आपको एक बात नजर आएगी। मैं आपको न सिर्फ देखने के लिए या चिन्तन के लिए बल्कि शोध करने के लिए आमंत्रित कर रहा हूं । किसी भी अंग्रेजी अखबार को ले लीजिए जैसे कि *हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, इण्डियन एक्सप्रेस, द हिन्दू;* दिल्ली से निकलने वाले किसी भी दैनिक समाचार पत्र को ले लीजिए। उसके शिक्षा वाले भाग को या 'अवसरों' (Opportunities) वाले भाग को देखिए। आपकी आंखें खुल जाएंगी। आजकल खुल रहे नए विश्वविद्यालयों पर एक नजर डालिए। ये जो नए खुले विश्वविद्यालय हैं या डीम्ड शैक्षणिक संस्थान हैं, ये क्या पढ़ा रहे हैं ? कोई भी जो शिक्षा से सरोकार रखता है उसे थोड़ा झटका लगेगा और आप समझ नहीं पाएंगे कि कितने ही कॉलेजों को बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन या एमबीए कोर्सेज पढ़ाने के लिए ऑथाराइज किया गया है। अगर आप थोड़ा और जानना चाहते हैं तो जाकर युवा पीढ़ी से बात करिए, उनसे बात करिए जो दसवीं कक्षा में पढ़ रहे हैं या 11वीं, 12 वीं में जाने वाले हैं, जिसे कि हायर सैकेण्डरी कहते हैं। वो कौनसे विकल्प हैं जिसे वे चुनेंगे ? वे जूझ रहे हैं। वे ही सचमुच शिक्षा के इस द्वन्द्व का सामना कर रहे हैं, न कि मैं, आप या कोई भी जो यहां बैठा हुआ है। क्या हमें साइंस लेना चाहिए, कॉमर्स लेना चाहिए, जीव विज्ञान या आर्ट्स लेना चाहिए ? ये विकल्प हमारे सामने हैं लेकिन हम कॉमर्स चुनते हैं।

आप इसकी कल्पना करने की कोशिश कीजिए, चाहे लड़के हों या लड़कियां, वे और उनके मित्र कहते हैं- भविष्य किसमें है ! कामर्स में ! अब कॉमर्स में भविष्य है! जहां शिक्षा का मतलब कॉमर्स में भविष्य देखना है, एमबीए में भविष्य देखना है, वहां शिक्षा की भूमिका बदल रही है। शिक्षा का स्वरूप बदल रहा है। शिक्षा का अर्थ बदल रहा है। और देखेंगे, अपने चारों तरफ देखिए, अचानक कोटा मशहूर हो गया है। कभी भी कोटा कोई महान शैक्षिक केन्द्र नहीं था। लेकिन मुझे बताया गया है कि ये एक राष्ट्रीय स्तर का केन्द्र बन चुका है जहां लोग अपने खर्चे पर आकर रहते हैं और यह सीखते हैं कि प्रतियोगी परीक्षाओं में कैसे पास हुआ जाता है। हम इसे शिक्षा की दुकान कहते हैं। ये शिक्षा की दुकान ही हैं लेकिन यही तो हम चाहते हैं। किस तरह की शिक्षा की मांग है, और क्या करें यदि इसी तरह की जरूरत लगातार बढ़ती जा रही है। आंकड़े अविश्वसनीय और अकल्पनीय हैं। आप मेरे दोस्त की बेटी से पूछिए- ''क्या पढ़ रही हो ?'' ''हम पढ़ रहे हैं - क्या पढ़ रहे हो ? हम फैशन डिजाइनिंग कर रहे हैं।'' मैं फैशन के खिलाफ नहीं हूं। मेरे ख्याल से महिला और पुरुष सुन्दर दिखते हैं, पहले की तुलना में इस फैशन डिजाइनिंग के साथ और भी सुन्दर दिखते हैं। ब्यूटी पार्लर आजकल सब जगह, यहां तक कि छोटे कस्बों में भी, खुल रहे हैं। औरतें अपनी सौंदर्य वृद्धि के लिए इन पार्लरों में जाती हैं। बहुत अच्छी बात है लेकिन सामान्यत: हम शिक्षा के बारे में अलग तरह से सोचते थे। पर ये चिन्तन का विषय होना चाहिए। शल्य जी के लड़के की लड़की ने एम.ए. साहित्य में किया है। साहित्य सम्मानजनक है। मैंने पूछा- ''अब क्या करेगी ? मीडिया करेगी।'' मेरे कान खुल गए। मैंने सोचा ये लड़की समझती है कि भविष्य मीडिया में है। और मीडिया क्या है ? अखबार को उठाकर खोलिए, टीवी खोलिए। आपको पता चल जाएगा मीडिया क्या है। अखबारों को आप पढ़ नहीं सकते। यह मीडिया है। अब अखबार को देखिए, कितने पेज खेल पर हैं, कितने बिजनेस पर हैं, कितने विज्ञापनों पर, और कितने बेचारे खबरों पर और कितने खबरों के विश्लेषण पर हैं ? यह सच्चाई है जिसका आप सामना करते हैं। *द हिन्दू* को छोड़कर, जिसे वैसे भी आजकल बहुत कम लोग खरीदते हैं, क्या कोई ऐसा अखबार है जो पढ़ने लायक है? मैं यह तथ्य आपके सोचने का दे रहा हूं क्योंकि यही इस वर्तमान का जीवन्त यथार्थ है।

अब मैं ध्यान थोड़े अमूर्त स्तर पर ले जाता हूं। एक ऐसा स्तर जहां जो हो रहा है वह और भी ज्यादा विध्वंसकारी है। यह उस दृष्टिकोण से विनाशकारी है जिसे हम शिक्षा कहते हैं या कहते थे। शिक्षा को हम - हालांकि यह स्वयं को भ्रमित करने जैसा था सत्य की खोज, ज्ञान की खोज, वस्तुनिष्ठता की खोज, आत्मनिष्ठता से स्वयं को बाहर निकालकर जो जैसा है उसे वैसा देखने का जरिया मानते थे। अब ज्ञान को लेकर जो विचार है उसके अनुसार ज्ञान को खोजा नहीं जा सकता बल्कि ज्ञान बनाया जाता है। ज्ञान एक ऐसी भोग्य वस्तु है जिसका उत्पादन किया जा सकता है। ये एक आधारभूत परिवर्तन है जो हमारे आस-पास घट रहा है और जिसके बारे में हमें जागरूक होना चाहिए। ज्ञान अब ऐसी चीज नहीं रही जिसे कि कड़ी मेहनत से ढूंढ़ा जाता था। ऐसा कुछ जो कि है, होने, न होने का सच। ज्ञान जिसे कि सृजित किया जाता है और आप सब जानते हैं कि ज्ञान किसलिए ? अगर आप लोग कभी देखते हों, यह वास्तविक द्वन्द्व है। मुझे इसके बारे में कहने दीजिए, वृहस्पतिवार को *द हिन्दू* का साइंस सेक्शन आता है। यह बहुत अच्छा अखबार है। यह आपको विज्ञान के बारे में नवीनतम जानकारी देता है। अद्यतन रखने की कोशिश करता है। मैंने इसमें एक धीमा परिवर्तन देखा है। वृहस्पतिवार के साइंस सेक्शन में पहले या तो वैज्ञानिकों के जीवन के बारे में कुछ बताया जाता था जिससे कि आप उनके बारे में जान सकें या फिर महान खोजों के बारे में बताया जाता था ताकि आप वैज्ञानिकों के जीवन के जरिए उन खोजों के या जो भी नवीनतम

विज्ञान में हो रहा है, उसके बारे में जान सकें।

अब यह सिर्फ एपलाइड विज्ञान से ही संबंधित होता है। किस फसल में क्या कीड़ा लगा हुआ है और इस कीड़े का क्या करें ? मैं एपलाइड विज्ञान के जबरदस्त उपयोगिता से इंकार नहीं करता हूं लेकिन यदि एपलाइड विज्ञान स्वयं विज्ञान बन जाए, न कि जिसे एपलाई किया जाता है, तो ये मेरे ज्ञान के दृष्टिकोण में और विज्ञान के दृष्टिकोण में एक बदलाव है। ज्ञान की संकल्पना में ही बदलाव है कि ज्ञान को मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए सृजित किया जाता है। ज्ञान मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने का जरिया मात्र है। लेकिन मनुष्य की जरूरतें क्या हैं ? हमारे यहां पहले कहा गया है कि मनुष्य क्या है, काम है, अर्थ है। मनुष्य कामनायुक्त का प्राणी है। वह क्या चाहता है ? वह खुशी चाहता है, आनन्द चाहता है। सारे अखबार 'काम' से भरे हुए हैं! आप फोटो देखिए सिर्फ काम मिलता है। भारतीय कला काम पर केन्द्रित ही नहीं बल्कि काम से परिपूर्ण रही हैं। हमारा साहित्य, हमारी कला, हमारी पेन्टिंग्स, राजस्थान की मीनिएचर पेन्टिंग्स, पहाड़ी पेन्टिंग्स - इनका विषय (Theme) कृष्ण का प्रेम रहा है। मूर्तिकला को देखिए, शायद ही हिन्दुस्तान में एक भी मन्दिर ऐसा हो जो खुले तौर पर उसे प्रदर्शित न करता हो जिसे हम सेक्स कहते हैं। हम आश्चर्यचकित होते हैं, कुछ को तो सदमा भी लगता है लेकिन आज जब हम अपने अखबारों के पन्नों में और टीवी सीरियल में इसका खुला प्रदर्शन देखते हैं तो पीड़ा होती है। यह हममें उस प्रवृत्ति को जन्म देते हैं जिसकी परिणिति हिंसा है, युद्ध है, सैक्स है।

युद्ध सिर्फ इराक में नहीं लड़ा जाता। युद्ध केवल हिन्दुस्तान के उत्तरपूर्वी हिस्सों या कश्मीर में ही नहीं है। यदि आप अखबार खोलें तो आपका सामना ऐसी खबरों से होता ही है जहां जानते-बूझते किसी विचारधारा के नाम पर या बिना विचारधारा के भी लोगों को मारा जा रहा है। अमेरिका में एक युवा विद्यार्थी ने पिस्तौल लेकर अपने दोस्तों पर अंधाधुंध गोलियां चलाई। इसके बारे में जो वास्तविक संख्यात्मक आंकड़े हैं वे बिल्कुल अविश्वसनीय हैं। ये हिंसा है, व्यवस्थित हिंसा है। पूरी दुनिया के मत के खिलाफ भी अमेरिका ने इराक से युद्ध किया। सुरक्षा परिषद के मत के खिलाफ, हर किसी के मत के खिलाफ। हाल ही में जो लेबनान में हुआ वह पुन: इसका स्मरण कराता है। ये ज्ञान जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह मुक्ति के लिए नहीं है, न्याय के लिए नहीं है और न ही गरीबी से निजात दिलाने के लिए है। ये ज्ञान जिसका सृजन किया जा रहा है मनुष्य की कुछ मुख्य जरूरतें जैसे कि, व्यवस्थित विध्वंस या हिंसा को बढ़ाने में मदद कर रहा है। ऐसा सुख जिसकी जड़ें वहां हों जिसे हम निकृष्ट किस्म का ऐन्द्रिक कहते हैं, यही है जो ग्लोबलाइजेशन को निर्मित करता है। ऐसे सामान और सेवाओं का बहुतायत में उत्पादन जिसकी हमें जरूरत नहीं है, जो प्रदूषण फैला रहे हैं और जो वर्तमान के हर एक दृष्टिकोण से विध्वंसकारी हैं। यह तथ्य है।

आंकड़ों के बाद आंकड़े, यहां से नहीं बल्कि पश्चिमी देशों जैसे कि अमेरिका से, प्रकाशित न जाने कितनी ही किताबें विलुप्त हो रही प्रजातियों के बारे में लिखी जा रही हैं। समय कम है, हर कोई चेतावनी दे रहा है। कल्पना करिए एक महान वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिन्स, ये एक मार्मिक कहानी है, कृपया इस पर सोचें, उन्होंने इन्टरनेट पर एक सवाल पूछा। आजकल लोग इन्टरनेट पर सवाल पूछते हैं। लेकिन यहां एक महान वैज्ञानिक इन्टरनेट पर लोगों से सवाल पूछ रहा है। उन्होंने पूछा - ''आने वाले सौ सालों में मानवता का भविष्य क्या है ?'' वे चिन्तित हैं और अन्य सब भी चिन्तित हैं। सारे जवाबों को देखने के बाद लोग उनसे ये चाहते थे कि वे जवाब दें। उन्होंने कहा - ''मुझे नहीं पता इसीलिए तो मैंने सवाल पूछा था।'' ये सवाल इतना आवश्यक बन चुका है कि बड़े-बड़े लोग इसे पूछने लगे हैं। देरिदा की ओर जाते हैं। वो देरिदा जो कि हर तरह के विचार की नींव को, ज्ञान की खोज को या किसी भी चीज के बारे में दावों को तोड़ने के लिए जिम्मेदार है। ये उत्तर आधुनिकतावादी हैं। उसे किताब लिखनी पड़ी, जिसे विश्वविद्यालय की आंख कहते हैं - राइट टू फिलोसॉफी। इसका क्या आशय है ? विश्वविद्यालय की आंखें अंधी हो रही हैं। विश्वविद्यालय अब विश्वविद्यालय नहीं रहे। वे अब उसका हिस्सा हैं जिसे हम इन्डस्ट्रीयल कॉम्पलैक्स कहते हैं। शोध के लिए अनुदान कौन दे रहा है ? कहां से दे रहा है और किसलिए दे रहा है ? ज्ञान का वैश्यीकरण क्यों हो रहा है और ये क्यों गलत है ? अगर बुद्धिजीवी उन विषयों पर शोध करने के लिए, जिसके लिए उन्हें अनुदान मिल रहा है, अपने आपको बेच सकते हैं तो ये क्यों गलत है ? ये सिर्फ ज्ञान नहीं है कि ज्ञान का तकनीक में रूपान्तरण किया जाना है, कि आत्मचेतन अवस्था में ज्ञान उस तरह के ज्ञान के उत्पादन के लिए माध्यम बनाई जाती है जिसको कि तकनीक में बदला जा सके। लेकिन तकनीक किसके लिए ? हमें तकनीक नहीं चाहिए। तकनीक उत्पादन के लिए ? उत्पादन किसके लिए ? उत्पादन सेल्स, मार्केटिंग, विज्ञापन के लिए ? आपको सामान चाहिए या नहीं, उसे आपके ऊपर थोपा जाएगा और आपको उसके इस्तेमाल के लिए मजबूर किया जा रहा है। अब यही वास्तविकता है और अब यही यथार्थ है। तो हम करें क्या ? बैठकर रोने का और शिकायत करने का कोई फायदा नहीं। आपको समझना पड़ेगा कि वर्तमान का जीवंत यथार्थ क्या है ? जिसे वे ताकतें आकार दे रहीं हैं जिन पर हमारा बहुत कम नियंत्रण है।

इस संदर्भ में क्या करना चाहिए ? मैं वापस आता हूं, ये विषय हमेशा की तरह लम्बा है और समय कम है। लेकिन आपसे मैं अपने कुछ सरोकारों को बांटना चाहता हूं। एक बुनियादी द्वन्द्व जिसका सामना कुछ हद तक आप सभी करते होंगे। एक मायने में ये जीवन्त यथार्थ है। दूसरे मायने में इस जीवन्त यथार्थ को मैं स्वीकार नहीं करता। मैं स्वयं ही अतीत की पैदाइश हूं। मेरे मन को, वांछनीय और आदर्श के बारे में, मेरे विचारों को, आपकी ही तरह पूर्णत: किसी विपरीत चीज ने आकार दिया है।

इस स्थिति में मैं क्या करूं ? अब मैं बातचीत के फोकस को थोड़ा बदलता हूं। ऐसा क्यों होता है कि सभी लोग बार-बार शिक्षा की समस्या की ओर मुखातिब होते हैं ? ऐसा क्यों है ? उपनिषदों के जमाने से, जब से उपनयन संस्कार का विचार बना, तब से, विद्यार्थियों को शिक्षा के घर जाना होता था तब से, जब से उपनिषदों में उद्दालक ने श्वेतकेतु से 'तत्वमसि' पूछा तब से, जब से प्लेटो के संवाद थे तब से, प्लेटो एक दास को गणितीय सत्य पढ़ाने की कोशिश करता है तब से, हर जगह मनुष्य का शिक्षा से सरोकार रहा है। क्यों ? क्यों कृष्णमूर्ति को ऋषि वेली में शैक्षिक संस्थान स्थापित करना पड़ा ? सिर्फ ऋषि वेली ही नहीं बल्कि बाकी सब जगहों पर जैसे इंग्लैण्ड, भारत और बनारस। ऐनीबेसेन्ट ने जो किया वो क्यों किया ? टैगोर ने शांतिनिकेतन को क्यों स्थापित किया ? शांतिनिकेतन एक शानदार संस्थान है। एक से ज्यादा अर्थों में शानदार है। वह न केवल कला और विज्ञान का केन्द्र रहा बल्कि वे चीन और जापान के प्रति भी जागरूक थे। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यही वह देश है जहां टैगोर ने बंगाल में एक चीन भवन और एक हिन्दी भवन की स्थापना की। शान्तिनिकेतन - विश्व भारती - में एक हिन्दी भवन है। एक चाइना भवन भी है। और सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि वहां एक श्रीनिकेतन भी है। जिसका सरोकार आसपास के गांव और उनकी समस्याओं से था कि विश्वविद्यालय उनके लिए क्या कर सकता था। ये थी टैगोर की दृष्टि। और वे ऐसी शिक्षा चाहते थे जिसमें विज्ञान, कला, कविता, साहित्य, संगीत, नृत्य, भारत से बाहर की दुनिया के बारे मे जागरूकता, संसार में उनका योगदान और उससे भी परे विश्वविद्यालय की आसपास के गांव की संकल्पना के प्रति जिम्मेदारी शामिल हो। श्री अरविन्द के बारे में क्या ? आश्रम में शिक्षा पर बुनियादी जोर था। चेतना का रूपान्तरण, जैसा कि सब जानते हैं कि श्री अरविन्द के विचार आधुनिकता और भविष्य के उन्मुख थे। वे इंकार नहीं करते; उनकी विचारधारा की शुरूआत दो तरह की स्वीकारोक्ति, दो तरह के नकार के विपरीत; सन्यासी का नकार और चार्वाक का भी नकार था। इन्द्रियों का नकार या अति आधुनिक का नकार। और उन्होंने न सिर्फ ये देखा कि ये एक बुनियादी समस्या है बल्कि ये भी सोचा कि इसे शिक्षा में कैसे रूपान्तरित किया जाए। और भी अन्य कहानियां हैं, मैं उनमें नहीं जाना चाहता। शिक्षा में विभिन्न प्रयोग क्या दयानन्द सरस्वती ने नहीं किए ? वे आमूल परिवर्तनवादियों में भी आमूल परिवर्तनवादी थे। कल्पना करिए उन्होंने उपनिषदों को अस्वीकार किया। क्योंकि उपनिषद वेदों के विपरीत थे। उन्होंने गीता को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने पुराणों को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने लगभग हर उस चीज को अस्वीकार कर दिया जिसे एक व्यक्ति के रूप में उन्होंने पढ़ा था। उनके जैसा आदमी अकल्पनीय है। फिर भी वे इसी संस्कृति में जिये और आर्य समाज को रूपान्तरित कर एक शैक्षिक संस्थान बनाया। उन्होंने आंग्ल वैदिक शिक्षा संस्थान बनाई। भारत में शिक्षा की बात की। गांधी जी ने भी बुनियादी शिक्षा स्वीकार किया।

मनुष्य क्यों वापस शिक्षा की ओर मुखातिब होता है ? क्योंकि दुर्भाग्य से मैं वह नहीं हूं जो मैं होना चाहता हूं। सौभाग्य से मनुष्य शिक्षित पैदा नहीं हुआ। यदि मनुष्य वैसे पैदा नहीं हुआ होता जैसे कि वह पैदा हुआ, तो शिक्षा की समस्या होती ही नहीं। आपको भाषा सिखानी पड़ती है, आपको चलना सिखाना होता है, घुटनों के बल चलना सिखाना पड़ता है, कपड़े पहनना सिखाना होता है। हम शिक्षा के इस हिस्से को भूल जाते हैं। जब हम शिक्षा के बारे में सोचते हैं तो हम उसे बहुत ही संकीर्ण दायरे में रख देते हैं। जैसे की शिक्षा सिर्फ विश्वविद्यालय, कॉलेजों या फिर स्कूलों में ही होती हो। जैसे कि इनसे बाहर कोई शिक्षा होती ही नहीं है। वास्तविक शिक्षा बच्चे के स्कूल या कॉलेज जाने से पहले ही शुरू हो जाती है। ये कौनसी शिक्षा है ? हम बार-बार क्यों कहते हैं, क्योंकि हमें पता लगता है कि मनुष्य को जो होना चाहिए, जैसा होना चाहिए, वो वैसा नहीं है, मनुष्य केन्द्र में है। मनुष्य ही सब चीजों का मापक है। लेकिन इन सभी चीजों से उदित होते हुए मनुष्य को कैसे पाया जाए ? मनुष्य में ही खोट है। मैं दुनिया को अपनी ऊंचाई के सापेक्ष मापता हूं। मेरी दस उंगलियां हैं। बीस की गणना है, इतने फुट हैं, इतने इंच हैं। लेकिन दुर्भाग्य से जब मैं दुनिया को जानने की कोशिश करता हूं तो मैं उसे शरीर के सापेक्ष नहीं जानता हूं। मैं उसे अपने मन के सापेक्ष जानता हूं। मन क्या है ? लेकिन सही और गलत में क्या फर्क है ? क्या सही को वैसे माने जैसे अरस्तु ने माना ? एक, बौद्धिक प्राणी की तरह या एक सामाजिक-राजनैतिक प्राणी की तरह या फिर धर्म के कहे अनुसार। लेकिन धर्म क्या है ? मनुष्य की

वह कौनसी योग्यता है जो यह जानने की कोशिश करती है कि धर्म क्या है ? शरीर का और इन्द्रियों का विकास, शरीर की शिक्षा - हां। इन्द्रियों की शिक्षा - हां। मन की शिक्षा। मन की शिक्षा क्या है ? कामना, कामना कैसे होती है ? लेकिन बुद्धि (इन्टलेक्ट) की शिक्षा, बुद्धि की शिक्षा, सही और गलत के बोध की शिक्षा कैसी हो ? और उनकी प्रासंगिकता और अप्रासंगिकता भी। यह बहस कैसे समाप्त हो? दोस्तो, दृश्य बहुत बुरा है। शिक्षा का सरोकार शरीर से या मन से, या बुद्धिमत्ता या सही और गलत के बोध से, अच्छाई और बुराई से, सुन्दर और असुन्दर से, सत्य और असत्य से हो सकता और यह भेद करने वाली चेतना क्या है जिसे विवेक कहते हैं ? प्रज्ञा, जो कि विवेक से संबंधित है। ये विवेक क्या है ? क्या हम इन सिद्धांतों को पढ़ा रहे हैं ? यहां तक कि ज्ञान भी। सभी शिक्षण सिद्धांत, सभी सीखने के सिद्धांत किसलिए हैं ? ईमानदारी। क्या हम परीक्षा में धोखा कर रहे हैं ? क्या मैं पढ़ाते वक्त बेईमानी कर रहा हूं या ईमानदारी बरत रहा हूं ? क्या मैं मदद कर रहा हूं ? क्या मैं दूसरों का ध्यान रख रहा हूं ? क्या मेरी चेतना अन्य केन्द्रित (other centered), विद्यार्थी केन्द्रित है, सीखने वाले पर केन्द्रित है ? मेरी चेतना क्या है ? विद्यार्थी जानता है कि मेरी चेतना कैसी है। उसे पता है कि मैं सचमुच पढ़ा रहा हूं या धोखा दे रहा हूं। उसे पता है कि मैं सचमुच उसकी व्यक्ति के रूप में विकास में मदद कर रहा हूं या फिर मैं सिर्फ उसे अपना विद्यार्थी बना रहा हूं। विद्यार्थी को सब पता है। वह वेबकूफ नहीं है। ये ही पूरी कहानी है। क्या मैंने स्वयं को सिखाया है ? मैंने स्वयं को कैसे सिखाया और मेरे सीखने में सिर्फ सूचना अर्जित करना, ज्ञान अर्जित करना, बुद्धिमत्ता अर्जित करना या किसी भी चीज को अर्जित करना ही केवल शामिल नहीं है बल्कि गंभीरता अर्जित करना, प्रतिबद्धता अर्जित करना, ईमानदारी, सहयोग, अन्य केन्द्रित चेतना और स्वयं को सामने वाले व्यक्ति या विद्यार्थी के अनुरूप यानि कल्पना करना भी शामिल है।

मैं अपनी बात यह कहते हुए समाप्त करना चाहूंगा कि इससे आगे सही और गलत में जो फर्क है वह स्थिर नहीं है जैसे कि ज्ञान स्थिर नहीं है। मैं आपके साथ दो घटनाओं को लेकर अपने विचार बांटना चाहता हूं। पहली जो कि कल शायद आपने पढ़ा होगा, मुझे भरोसा है कि आप सबने अखबार में जरूर पढ़ा होगा। लेकिन क्या आपने उस पर चिन्तन किया या ध्यान से पढ़ा ? ऐसा नहीं कि प्लूटो प्लूटो नहीं रहा। उसका नाम नहीं बदला है। सिर्फ उसका वर्गीकरण बदला है। अब इसे एक ग्रह नहीं माना जाता है। पर किस आधार पर ? विज्ञान के इतिहास में सबसे अजीब घटनाओं में से यह एक है। दुनियाभर के खगोलशास्त्री ध्वनिमत के जरिए इस फैसले पर पहुंचे हैं । क्या सत्य का फैसला ध्वनिमत से किया जा सकता है ? जहां तक मैं विज्ञान के इतिहास को जानता हूं अब तब कभी भी सत्य का फैसला ध्वनिमत से नहीं हुआ। ऐसा कैसे संभव हुआ कि विज्ञान सभा इतनी छोटी हो गई कि ध्वनिमत से फैसला ले ! पिछले 50-100 सालों से विज्ञान के क्षेत्र में क्या हो रहा है ? ये पूर्णत: चोट पहुंचाने वाली कहानी है। विज्ञान सभा जिसका निर्माण गणित और तर्कशाास्त्र, देश और काल, पिंड और कारणता की नींव पर हुआ था, वह टूटकर बिखर चुकी है। गणित की नींव को धक्का लगा। तर्कशास्त्र और विचार की नींव को धक्का लगा। सारी ही नीवों को धक्का लग चुका है। बोध की धारणा और इन नीवों को हम नकार चुके हैं। हम इस दुनिया में, विचार के क्षेत्र में, ज्ञान के क्षेत्र में और मूल्यों के क्षेत्र में अब पूर्णत: असुरक्षित रहेंगे।

क्या अच्छा है, क्या बुरा है सौंदर्य के क्षेत्र में भी ? उन्होंने सौन्दर्य और कला की धारणा के खिलाफ भी विद्रोह कर दिया। ये अविश्वसनीय है। यदि हम सौन्दर्य की बात कला, साहित्य, पेन्टिंग के संदर्भ में करते हैं तो हमें पुरातन विचारों वाला बेवकूफ समझा जाता है। पश्चिम के सौ सालों ने मनुष्य द्वारा सृजित सभी चीजों को, मानव सभ्यता को नष्ट कर दिया। जो कुछ भी मानव ने 5000 वर्षों में सृजित किया, यदि हम 3000 ई. पू. मानव सभ्यता की शुरूआत मानें तो?

हम ऐसे बिन्दु पर खड़े हैं जहां हर चीज सवालों के घेरे में है। यदि हर चीज सवालों के घेरे में है तो सवाल ही खड़े नहीं होते। लेकिन सवाल ये खड़ा होता है कि क्या कोई विधि है जिसके जरिए उठाए जा रहे सवालों के बारे में फैसला किया जा सके? पश्चिम के कई विचारक युक्ति या तर्क की नहीं बल्कि वार्तालाप की बात करते हैं। कुछ भी तय नहीं हो सकता क्योंकि तय कैसे करें ? मानदण्ड कहां है, मानक क्या है ? वो कहा है जो कि माप सकता है ? हमारे युवा और युवतियां बड़े हो रहे हैं न सिर्फ यहां बल्कि पश्चिम में भी। पश्चिम में तो ये चीज और भी परेशान करने वाली है जहां मानवता का पूरा इतिहास न सिर्फ विवादास्पद हो रहा है बल्कि अप्रासंगिक भी माना जा रहा है। उपनिषद और शंकर को ही नहीं, प्लेटो, अरस्तू, कांट, हेगेल और सभी अन्य; पूर्णत: अप्रासंगिक माने जा रहे हैं। इस परिस्थिति में हम क्या करें ? मेरी सलाह में विवाद या फर्क जो भी हो, लेकिन है, और हम उससे पीछा नहीं छुड़ा सकते। हो सकता है कि मुझे पता नहीं हो कि 'अच्छा' क्या है। मैं इसे वस्तुनिष्ठ तरीके से स्थापित न भी कर पाऊं, लेकिन फर्क है और वह अप्रासंगिक नहीं है। सत्य और असत्य के बीच में फर्क है और इससे इंकार नहीं किया जा रहा है। जिससे इंकार किया जा रहा है

वह यह है कि इसे स्थापित कैसे किया जाए कि कोई चीज सत्य है या असत्य। उसी तरह से इस फर्क को सुन्दर कहेंगे या नीतिगत रूप से मान्य। कला की श्रेणी एक श्रेणी ही कैसे है ? अच्छी कला, बुरी कला। बेहतर चिंतकों में से कोई नहीं कहेगा कि सब चलता है, आपको अस्वीकृत करना ही पड़ेगा। गुणात्मक भेद रहेंगे ! जहां तक मैं जानता हूं कोई यह नहीं कहता है कि सब न्यायपूर्ण है, अन्याय जैसी कोई चीज नहीं है, बहुलता जैसी कोई चीज नहीं है। सामान्यतः लोग एक ऐसी दुनिया बनाना चाहते हैं जो न्यायूपर्ण है, जहां असमानताएं कम हैं। इस विरोधाभास की कल्पना करिए। यह एक विचित्र विरोधाभास है कि फर्क हैं और तब तक रहेंगे जब तक कि मैं आत्म-चेतना न खो बैठूं।

यहां बैठे दोस्तों को मेरी सलाह है, कभी हम अनौपचारिक रूप से चर्चा कर सकते हैं कि हमें फर्क की इस अनुल्लंघनीयता, अप्राप्यता और अपरिहार्यता पर जोर देना है। और अन्ततः हमें नये रास्ते पर जाना है। यह नया रास्ता मतारोपण का नहीं होगा, हो भी नहीं सकता है। मैं अपने विद्यार्थियों को यह नहीं कह सकता कि यही सत्य का पैटर्न है। लेकिन मैं उन्हें यह बता सकता हूं इनमें फर्क है। और उन्हें ये बता सकता हूं कि वे इस फर्क के लिए अपने अन्दर क्षमता पैदा कर सकते हैं; संवदेनशीलता पैदा कर सकते हैं। चिन्तन और अभ्यास के स्व प्रयत्न के जरिए इसमें सुधार ला सकते हैं।

अभ्यास और वैराग्य को देखिए। यह वैराग्य शब्द गीता से लिया गया है। अर्जुन ने कृष्ण से कुछ पूछा कि ये कैसे किया जा सकता है ? उन्होंने कहा, ''सिर्फ दो तरीके हैं - सतत अभ्यास। लेकिन वैराग्य का क्या मतलब है ? वैराग्य का मतलब है - आत्मनिष्ठ स्वार्थों और पूर्वाग्रहों को एक तरफ रखना। सामान्य तौर पर वैराग्य का जो अर्थ बताया जाता है वह नहीं है। वैराग्य का अर्थ है कोई राग या द्वेष नहीं हो। राग या द्वेष का न होना क्या है? इसका मतलब है आत्मनिष्ठ स्वार्थों को अलग रखना। जहां तक संभव हो वस्तुनिष्ठ होने की कोशिश करना। और आपकी चेतना विकसित होगी। ये चेतना का विकास क्या है ? ये जो फर्क है यह तलवार की धार की तरह है जैसा कि मेरे एक मित्र ने लिखा था, मुझे अभी भी याद है, चेतना तलवार की धार पर चलती है। वह फर्क करती है पर तलवार की धार अब अधिक पैनी और अधिक सटीक हो गई है। सत्य और असत्य की धारणाएं बदलती हैं। लेकिन फर्क नहीं बदलता। सभी के प्रति संवेदनशीलता, न केवल मानवीय पीड़ा के प्रति बल्कि सकारात्मक परिवर्तन के प्रति भी संवेदनशीलता, प्रशंसा करने की क्षमता और आनन्द को समझना। विश्व में सृजन के प्रति संवेदनशीलता - जब मैं सड़क पर जाता हूं मुझे इमारतें दिखती हैं और इनमें से कुछ इमारतें बहुत खूबसूरत और अच्छी बनी हुई हैं। बाहर ये पेड़ हैं इन्हें देखिए। अभी मैं ये देख रहा था कि बाहर मौसम कितना अच्छा है। क्या ये पिकनिक मनाने का समय नहीं है ? ये किसी व्याख्यान का समय तो नहीं है। लेकिन हमें ऐसे आयोजन करने होते हैं। अब मौसम के प्रति संवेदनशीलता क्या है ? आसमान के प्रति, फूलों के प्रति, सभी के प्रति, मनुष्य के प्रति संवेदनशीलता क्या है ? पेड़ों के प्रति संवेदनशीलता क्या है ? किसी मुस्कुराते बच्चे के चेहरे के प्रति, किसी खूबसूरत लड़की के चेहरे के प्रति, पुरुष के परिपक्व चेहरे के प्रति संवेदनशीलता क्या है ? मैं सभी चीजों से सीख सकता हूं और आप सीख भी सकते हैं। मैं अन्ततः यह कहूंगा कि सीखना जीवन जीने की कला है। जीवन को सार्थक बनाने की कला है। न सिर्फ अपने लिए बल्कि दूसरों के लिए भी, और इन दूसरों में उम्र का बहुत फर्क हो सकता है, क्षमताओं का फर्क हो सकता है और उनका अनन्त रूप अलग है। आपको प्राकृतिक रूप से न कि कृत्रिम रूप से अपने आपको समायोजित करना है। दूसरों की अन्यता देखकर कोई दूसरा अपने जीवन को सार्थक बना रहा है। कम से कम इसके लिए जितना भी ज्यादा आप करें उतना ही अच्छा है। दुनिया में रहते हुए दुनिया के बाहर रहते हुए। मृत्यु के सम्मुख रहते हुए, क्या मृत्यु सार्थक हो सकती है ? क्या वृद्धावस्था को सार्थक बनाया जा सकता है ? क्या किसी बच्चे के बड़े होने को सार्थक बनाया जा सकता है ? बच्चों और युवाओं के बीच में, युवाओं और वयस्कों के बीच, वयस्कों और वृद्धों के बीच में कैसा संबंध होना चाहिए ? महिलाओं और पुरुषों के बीच, लड़के और लड़कियों के बीच कैसा संबंध होना चाहिए ? हम एक सार्थक विश्व का सृजन कर सकते हैं। मैं यह कहते हुए अपनी बात को समेटना चाहूंगा कि शिक्षा, जैसे कि मैं देखता हूं, जीवन के लिए है, जीने के लिए है, सार्थक रूप से जीने के लिए है। बाकी सब के साथ, मैं अपनी बात का एक भिन्न दिशा में अंत करुंगा कि अनन्त मूल्यों की खोज में जीना जीवन को सार्थक बनाता है। क्योंकि हम सिर्फ जीते ही नहीं है बल्कि समय में जीते हैं और समय को कैसे सार्थक बनाया जाए ? कला की खोज में, किसी भी चीज की खोज एक आदर्श स्थिति है। फिर चाहे आप सौ साल जीएं या हजार साल। क्या हम अभी भी खोजने की कोशिश करते हैं, समझने की कोशिश करते हैं ? मैं अब भी पाता हूं कि किताबें मुझे चुनौती देती हैं, एक बार फिर सोचने के लिए। तो कार्य बहुत लम्बा है लेकिन चुनौतीपूर्ण है, मधुर और अच्छा है। धन्यवाद ! ◆